वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रामचरित मानस की प्रासंगिकता

जगपाल सिंह यादव,

ज्वालामुखी मंदिर के पास,
रानीगंज मोहल्ला पन्ना–जिला,पन्ना (म.प्र.)

गोस्वामी तुलसीदास मध्य काल के भारतीय संस्कृति के सबसे महान कालजयी रचनाकार थे। केवल तत्त्व विवेचन या केवल साधना में प्रवृत्त न होकर उन्होंने रामचरित मानस को अपने कलप भेद को दृष्टिगत रखते हुए अपनी मति, अपनी समझ, निजी 'मानस' के अनुसार प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति का पुनर्नवीकरण कर दिया था। इस क्रम में परम्परा के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी गोस्वामी तुलसीदास ने उसमें कितने परिवर्तन कर दिये थे, यह देखकर आश्चर्य होता है। श्री राम को ब्रह्मा का अवतार उनके पहले भी माना जाता था। तुलसी ने अपनी नवचेतन दृष्टि से उनके अभूतपूर्व अवलोकन पर बल दिया जिसके फलस्वरूप वे मानव मात्र की ..... चरम उपेक्षित जन की पीड़ा का निवारण करने वाले उनके दुःख कष्ट से विकल हो जाने वाले उनके लिए अपनी स्वतंत्रता तक को विसर्जित कर देने वाले, उनके प्रेम पराधीन नातेदार बन गये। तुलसीदास का परम्पराबोध स्थितिशील या जड़ न होकर विकासशील और संग्रह–त्यागवादी था। इसका अर्थ यह हुआ कि आधुनिकता की पहली माँग तुलसी ने दृष्टि को सिद्धान्त रूप में स्वीकार की है।[1]

तुलसी युगदृष्टा कवि थे या कहें अपने समय से आगे देखने वाले रचनाकार। उन्हें आने वाले समय का भान था। जिस तरह से आज अस्त्र–शस्त्र की होड़ मची हुई है। जो जितना परमाणुबम रख ले वह उतना बड़ा आँका जाता है। गोस्वामी जी ने स्पष्ट कर दिया था कि यदि सच्ची विजय पाना है, मानवता को विजयी बनाना है तो उसके लिए जिस रथ की जरूरत होगी वह मूल्यों से सुसज्जित रथ होगा। वरिष्ठ आलोचक **शंभुनाथ** के शब्दों में इन्हें व्यक्त करें तो– '' इस बिन्दु पर तुलसी द्वारा वर्णित युद्ध का वास्तविक अर्थ उजागर हो जाता है। एक पक्ष में मानव–मूल्यों से हीन भोगवाद की राक्षस–संस्कृति और विपक्ष में उच्चतर मूल्यों से संपन्न मानव–संस्कृति। राम–रावण की द्वंद्वात्मक पौराणिकता तुलसी के युग के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी तत्वों से तटस्थ नहीं रह सकती थी। यह जीवन मूल्यों की लड़ाई थी। अपने युग की लोक आकांक्षाओं से दीप्त आदर्शों को देश–काल में न पाकर तुलसी ने उनकी अध्यात्मिक दुनिया रची।''[2] मूल्यों के लिए जीने वाला व्यक्ति, समाज के लिए मर मिटने वाला व्यक्ति किसी सत्ता का मोहताज नहीं होता, बड़ी से बड़ी शक्ति को उसकी औकात बता देता है क्योंकि उसकी जड़ में लोक जनमानस होता है। आधुनिक युग में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने जिस तरह से बिना किसी अस्त्र–शस्त्र के अंग्रेजी साम्राज्यवाद को समाप्त किया उसके स्रोत में तुलसी ही हैं जिन्होंने 'अकबर' जैसे शाहंशाह को भी आईना दिखाने में संकोच नहीं किया–

'' हम चाकर रघुवीर के पटौ लिखौं दरबार।
तुलसी अब क्या होंहिगे नर के मनसबदार।।''

गोस्वामी जी द्वारा रचित रामचरित मानस एक अनुपम एवं कालजयी कृति है जिसका स्थान साहित्य की दृष्टि से ही नहीं भक्ति की दृष्टि से भी सर्वोपरि है। इसके काण्डों का नामकरण इनके

अर्थ को दर्शाता है। बाल काण्ड भगवान के बाल रूप व लीलाओं का वर्णन, अयोध्या काण्ड, राज्य से जुड़ी समस्याओं व राज्य भूमि का वर्णन, अरण्य काण्ड भगवान के वन गमन लीला का वर्णन, किष्किन्धा काण्ड, किष्किन्धा राज्य और उससे संबंधित घटनाओं पर आधारित, लंकाकाण्ड, लंका व युद्ध का विवरण और उत्तर काण्ड दर्शन संबंधित प्रश्नों व उत्तरों पर आधारित है। इस प्रकार छः काण्ड बहुत सहजता से आमजन मानस को समझ में आ जाते हैं।

महाकवि का श्रेष्ठ काण्ड 'सुंदर काण्ड' नाम गोस्वामी जी व वाल्मीकि दोनों द्वारा प्रयोग किया गया। इसमें ऐसा क्या सुंदर है जिसने इस नाम की सार्थकता को सिद्ध किया है। बहुत लोग इस काण्ड का नित्य पाठ भी करते हैं। जनश्रृद्धा की दृष्टि से व इस काण्ड की गंभीरता की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण है। साधारण व्यक्ति के अन्तःकरण में वस्तुतः अनगिनत कामनाएँ विद्यमान रहती हैं और सुंदरकाण्ड में समस्त कामनाओं की पूर्ति की जाती है। निष्कामता की महिमा का चाहे जितना भी प्रतिपादन किया जाए, पर व्यक्गित जीवन में अधिकांश लोगों का निष्काम न हो पाना स्वाभाविक है। सुंदर काण्ड सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। इसमें अर्थ और धर्म की उपलब्धि विभीषण के जीवन में होती है। 'काम' की दृष्टि से यदि विचार करें तो हमें दिखाई देगा कि पत्नी वियोगी भगवान श्री राघवेन्द्र को श्री किशोरी जी का समाचार सुना कर श्री हनुमान जी मिलाने की पूर्व भूमिका सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार भगवान की कामना पूर्ति में वे प्रमुख रूप से सहायक होते हैं। मानो भगवान राम यह सिद्ध करते हैं कि मेरा परम विराग तथा निष्काम भक्त हनुमान प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में उठने वाली छोटी– बड़ी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। सुंदर काण्ड को यदि दार्शनिक संदर्भ में देखें तो हम यों कह सकते हैं कि सुंदर काण्ड सुंदरता की सार्थक व्याख्या है। इसमें सुंदरता की जैसी व्याख्या की गई है, वैसी अत्यंत दुलर्भ है। इसमें कई स्थल तथा प्रसंग ऐसे हैं जहाँ गोस्वामी जी जानबूझ कर 'सुंदर' शब्द का प्रयोग करते हैं। यथा लंका यात्रा के श्रीगणेश में हनुमान जी का इस यात्रा का उद्देश्य जनकनन्दिनी श्री सीता को पाना है और इस यात्रा के श्रीगणेश में हनुमान जी समुद्र के ऊपर से छलाँग लगाने के लिए एक पर्वत शिखर का आश्रय लेते हैं। वैसे बंदर चंचलता का प्रतीक है। उसकी छलाँग स्वभाव जन्य होती है। एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर, जिनका कोई उद्देश्य नहीं होता। ऐसे ही मनुष्य का मन जीवन भर निरउद्देश्य छलाँग लगाता है। परंतु गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि इस मन बंदर की सभी छलाँगें वैसे ही लगवा दी जाएँ जैसे हनुमान जी ने लगाई तो परिणाम बहुत 'सुंदर' होता है, कल्याणकारी होता है क्योंकि वह छलाँग उन्हें जनकनन्दिनी श्री सीता के चरणों तक पहुँचा देगी।

''नर की मनसबदारी को, छोटे–मोटे राजा–नबाब की नहीं, शांहशाह अकबर की मनसबदारी को लानत मानने वाले ये गोस्वामी जी ही हो सकते हैं। भक्ति––आंदोलन की चेतना से जुड़े संत और भक्त ही हो सकते हैं। प्राकृत जनों पर एक भी पंक्ति न लिखने का हठ, शाहंशाह की मनसबदारी को लानत मानने का भाव उसी में आ सकता है जिसकी जड़ें जनता के बीच गहरी से गहरी गई हों। धरती पर गहरी जड़ें रोपने वाला वृक्ष ही सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकता है, बड़े–बड़े झंझावातों का सामना कर सकता है। गोस्वामी जी ऐसे ही ऊँचे छतनार वृक्ष थे। उनकी शक्ति का स्त्रोत जनता थी। उनकी आस्था का आलम्बन राम थे। राम के अलावा कोई नहीं। उनका मस्तक राम के सिवा किसी के समक्ष नत नहीं हुआ, कोई भी प्रलोभन उन्हें नहीं भरमा पाया। जनता के प्रेम और राम की निश्छल–निःस्वार्थ भक्ति के बूते पर वे सुख से पाँव पसार कर सोए, निश्चिंत मन, निश्चिंत प्राण।।''[3]

कबीर को अपने जुलाहा होने पर फक्र था। रैदास को चमार होने पर जिस तरह गर्व था कुछ उसी तरह तुलसी को ब्राह्मण होने का स्वाभिमान था और वह वर्ण व्यवस्था के हिमायती थे लेकिन जिस तरह से आज धर्म, वर्ण एवं जाति का तालिबानीकरण करने का प्रयास लोग कर रहे हैं तुलसी का मकसद यह कतई नहीं था। तुलसी तो वर्ण के माध्यम से समाज पर व्यवस्था कायम करना चाहते थे, समन्वय स्थापित करना चाहते थे।

'' श्रीराम द्वारा अहिल्या को शिला से देवी बनाना, निषादराज को गले लगाना, शबरी के आश्रम में जाकर उसके जूठे बेर खाना, वानर संस्कृति के नायक सुग्रीव को अपनाना, विधर्मी विभीषण को अपनाना, रीछ प्रजाति के जामवन्त को अपनाना आदि प्रकरण इस बात के साक्षी हैं कि श्रीराम ने सभी जातियों, प्रजातियों तथा तबकों के लोगों के साथ समता का भाव प्रदर्शित किया तथा उसके द्वारा गरीबी और विषमता के उन्मूलन का सार्थक प्रयास किया था।''[4]

तुलसी के लिए 'मानुष–सत्य' और मानवमूल्य सबसे महत्वपूर्ण था अन्य कोई चिन्ता नहीं थी उन्हें। उन्होने स्पष्ट घोषणा की –

'' धूत कहौ अवधूत कहौ, राजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ,

काहू की बेटी सो बेटा न व्याहब, काहू की जाति बिगारि न सोऊ।।''

'' आज हम आस्था की बात करते हैं, अस्मिता की बात करते हैं, स्वाभिमान की बात करते है, अकुंठित मानव–चेतना की बात करते हैं, और अपने परिवेश में उसे न पाकर निराश और विक्षुब्ध होते हैं। बड़ी–बड़ी बातें करते हुए छोटी से छोटी बातों पर, छोटे–छोटे प्रलोभनों पर हम बिक जाते हैं। व्यवस्था हमें सरलता से खरीद लेती है, हम व्यवस्था के ढोल बन जाते हैं। फिर मुक्तिबोध को उद्धत करूँ, तो लाभ–लोभ से प्रेरित समझदारी हमें रावण के घरों में पानी भरने को विवश कर देती है।''[5] लेकिन तुलसी मूल्यबोध के सहारे चलते रहे, व्यवस्था के ढोल नहीं बने निर्द्वन्द मन्दिर में सोते रहे, मस्जिद में भी सोते रहे।

तुलसी, अकबर के शासन काल में रामराज्य का मॉडल पेश कर रहे थे यह बड़े हिम्मत एवं निर्भीकता की बात है। आज लोकतंत्र है फिर भी हम दुम हिलाने से बाज नहीं आते। अन्तर सिर्फ इतना है तुलसी की दृष्टि में लोककल्याण था, हमारी दृष्टि में स्वकल्याण है।

तुलसीदास की विचारधरा का विपुलांश आज भी वरणीय है। श्री राम (सगुण या निर्गुण) ब्रह्म अवतार विश्वरूप चराचर व्यक्त जगत या चरम मूल्यों की समष्टि और स्रोत उनका जो भी रूप आपकी भावना को ग्राहय हो, के प्रति समर्पित, सेवा प्रधन हित निरत जीवन मन वाणी और कर्म की एकता उदार, परमत सहिष्णु, सत्यनिष्ठ अन्याय के प्रतिरोध के लिए वज्र कठोर प्रेम करूणा के लिए कुसुम भोग की तुलना में तप को प्रधानता देने वाला विवेकपूर्ण संयत आचरण, दारिद्रयमुक्त सुखी सुशिक्षित समृद्ध समतायुक्त समाज, साधुमत और लोकमत का समादर करने वाला प्रजाहितैषी शासन ..... संक्षेप में यही आदर्श प्रस्तुत किया है।[6] तुलसी की 'मंगल करनि कलिमल हरनि' वाणी क्या आधुनिकता इसको खारिज कर सकती है ? और फिर आधुनिकता को क्या वह आदर्श चुनौती दे सकता है कि आधुनिक प्राचुर्य युक्त समाज बाहर से जितना भरा–भरा लगता है भीतर से उतना खोखला क्यूँ है ? भौतिक समृद्धि के साथ ही मनुष्य को बेचैनी, छटपटाहट हतासा क्यों बढ़ती जा रही है ? ये प्रश्न आधुनिकता के प्रबल समर्थकों को भी सोचने के लिए विवश कर देंगे। पर तुलसीदास से हमारा सम्बन्ध केवल विश्व चिन्तन या मानवीय भाव बोध के स्तर का नहीं है। हमारा जातीय मानस जिन तत्वों से गठित हुआ है उनके वे अपूर्व ज्ञाता हैं हमारे जातीय मानस के विभिन्न स्तरों और

कहीं–कहीं परस्पर विरोधी दिशाओं में जाने वाले उसके भावों को उन्होंने भली–भांति समझकर उनका समाहार अपने साहित्य में मुख्यतः रामचरित मानस में किया। इसलिए मानस इतना लोकप्रिय और सामान्य हो सका है। यह सच है कि इन लगभग चार सौ वर्षों में हमारे जातीय मानस की जटिलता और बढ़ी है। उस पर नयी परतें और चढ़ी हैं फिर भी हिन्दी में अब भी तुलसी का ही कृतित्व ऐसा है। जिसके द्वारा भारत के जातीय मानस की मौलिक संरचना को समझा जा सकता है। अतः तुलसीदास आज भी हमारे लिए अपरिहार्य हैं। आज भी उनका आदर्श एक बड़ी सीमा तक हम लोगों के लिए दिशा निर्देशक है।

संदर्भ

1. शंभुनाथ,–'दुस्समय में साहित्य', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2002, पृष्ठ–39
2. डॉ. शिवकुमार मिश्र,–'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य', प्रथम लोकभारती संस्करण : 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ–205,206
3. सम्पादक–प्रो. वासुदेव सिंह, तुलसीदास, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1999, पृष्ठ–214
4. डॉ. शिवकुमार मिश्र,–'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य', प्रथम लोकभारती संस्करण : 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ–10

Copyright © 2017, Jagpal Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.